Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 7 | ISSUE : 5 | MAY 2021

जोधपुर संभाग के जैन मंदिरो की वास्तुकला में प्रतीकात्मक चिह्नों का महत्व

रुचिता मेहता [1] | प्रो. डॉ. ऋतु जोहरी [2]

[1] शोधार्थिनी, ललित कला विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्याल, जोधपुर.

[2] शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्याल, जोधपुर.

ABSTRACT:

जैन धर्म में मंदिरों के निर्माण में प्रतीकों का विशेष ध्यान रखा जाता है। मंदिरों के निर्माण के समय अनेक आकृतियों को ध्यान में रखकर मंदिरों का निर्माण किया जाता रहा है। जैसे तीर्थकरों का अंकन, मानवकृतियों का अंकन, धार्मिक चिन्हों का अंकन, पशु-पक्षियों का अंकन, प्राकृतिक दृश्यों का अंकन तथा ज्यामितीयक अंकन।

मंदिरों के निर्माण का अपना वैशिष्ट्य रहा है। युगानुसार भी और क्षेत्रानुसार भी उनका निर्माण होता रहा है। ये तल या अधिष्ठान से लेकर शिखर या स्तूपी तक अपना आकार मानव के शरीर के रचना की तरह ही अपना स्वरूप रखते हैं। उनकी सज्जा या अलंकरण का अपना खास विधान रहा है और इसके लिए शिल्पियों ने अपने कौशल को दिखाने में प्रतिस्पर्धा सी की है।

प्रासादों के स्वरूप के निर्णय के लिए हमें हमारे शिल्प ग्रंथों को जरूर देखना चाहिए जिनमें उनके रचनाकाल से पूर्व की परंपराओं को लिखा गया है। मयमतं हो या मानसार या फिर शैवागम अथवा वैष्णवागम हों, उनमें प्रासादों की रचना के लिए पर्याप्त विवरण मिलता है। दक्षिण के नारायण नंबूदिरीपात ने देवालय में प्रासादों के शिल्प के लिए निर्देश किए हैं तो सूत्रधार मंडन ने प्रासादमंडनम् सद में प्रासादों के संबंध में समय योजना और कार्यविधि को लिखा है। संयोग से इन दोनों ही ग्रंथों के संपादन का मुझे सौभाग्य मिला है।

KEYWORDS:

तीर्थकरों का, मानवाकृतियों का, धार्मिक चिन्हों का, पशु- पक्षियों का, प्राकृतिक का, ज्यातिमीयक का अंकन।

प्रस्तावना

शिल्पकारों ने मंदिरों के निर्माण में अपनी बुद्धि का भरपूर उपयोग किया। प्राचीन परंपराओं और शास्त्रों के आधार पर बने मंदिरों ने भारत के सांस्कृतिक गौरव की स्थापना की। यही वह आधार था जिस पर विधर्मी आक्रमण कर अपना धर्म स्थापित करना चाहते थे। उनका विचार था कि यदि भारत की वास्तुकला और संस्कृति को समाप्त कर दिया जाएगा, तो वे भारत में अपने धर्म का प्रचार आसानी से कर सकते हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति के स्थापत्य गांव के तल्लीन अवशेष पुनर्जीवित हो गए और फिर से सांस्कृतिक वैभव प्राप्त कर लिया। मंदिर की आवश्यकता का दूसरा पहलू इसका ऊर्जावान वातावरण है। मंदिर का आकार और निरुतार मंत्रों के पाठ की ध्वनि का प्रतिबिंब उपासक को ऊर्जा प्रदान करता है। जैन धर्म में मंदिरों के निर्माण में प्रतीकों का विशेष ध्यान रखा जाता है। मंदिरों के निर्माण के समय अनेक आकृतियों को ध्यान में रखकर मंदिरों का निर्माण किया जाता रहा है। जैसे तीर्थकरों का अंकन, मानवकृतियों का अंकन, धार्मिक चिन्हों का अंकन, पशु-पक्षियों का अंकन, प्राकृतिक दृश्यों का अंकन तथा ज्यामितीयक अंकन।

क) तीर्थकरों का अंकन

ख) मानवाकृतियों का अंकन

ग) धार्मिक चिन्हों का अंकन

घ) पशु- पक्षियों का अंकन

ङ) प्राकृतिक अंकन

च) ज्यातिमीयक अंकन

शोध का उद्देश्य-

जैन मंदिर मनुष्य की आस्था तथा विश्वास की अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं है, अपितु अत्यधिक सम्पन्न, वैविध्यपूर्ण धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि की मूर्त प्रस्तुति भी हैं। जैन मंदिर वास्तु का विकास, मंदिर के अंगों में आनुपातिक परिवर्तन एवं अभियोजन तथा अलंकरण योजना में परिवर्तन के रूप में परिलक्षित होता हैं। आलंकारिक कलाभिप्रायों में किसी नये अभिप्राय का अंकन या किसी अभिप्राय का स्थान परिवर्तन या त्याग आदि के द्वारा मंदिर वास्तु में शैलीगत परिवर्तन अभिलक्षित होते हैं साथ ही काल एवं परिस्थितियां भी मंदिरों के कलारूपों में परिवर्तन लाते हैं। अतएव मंदिरों में स्थित कलारूपों के परिवर्तन एवं विकास के प्रामाणिक अध्ययन के लिए देव प्रतिमा के विकास का अध्ययन भी अभिप्रेत हैं। इस दृष्टिकोण से जोधपुर संभाग के जैन मंदिरो की वास्तुकला में प्रतीकात्मक चिह्नों का महत्व की विवेचना करना भी आवश्यक हैं।

परिकल्पना-

प्रस्तावित शोध विषय '' जोधपुर संभाग के जैन मंदिरो की वास्तुकला में प्रतीकात्मक चिह्नों का महत्व '' एक ऐसा विषय है जो उचित प्रकाशन के अभाव में शोधकर्ताओं एवं सामान्य जन मानस की पहुंच से दूर है। ये मन्दिर अपनी भौगोलिक स्थिति के समीपवर्ती लोगों की धार्मिक भावनाओं को सिद्ध करते है, परन्तु इनका वैभव अन्य लोगों तक नहीं पहुंच पा रहा है। अतः इस शोध कार्य से भावी शोधार्थियों, इतिहासकारों, कलाकारों एवं विद्यार्थियों के साथ धर्म में रूचि रखने वाले लोगों को अत्यन्त लाभप्रद सामग्री प्राप्त होगी।

शोध की सामग्री एवं विधियाँ-

प्रस्तावित शोध के अन्तर्गत विभिन्न जैन मंदिरों साहित्य, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का संकलन किया जाएगा, साथ ही मन्दिरों के निर्माण से लेकर अब तक के इतिहास की जानकारी वहां के पुजारी व संबंधित लोगों के साक्षत्कार द्वारा प्राप्त की जायेगी एवं विभिन्न पुस्तकालयों तथा शोध संस्थाओं में जाकर संबंधित विषय का गहन अध्ययन किया जाएगा। मन्दिरों में जाकर उनकी फोटोग्राफी करवाई जायेगी। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से शोध कार्य किया जाएगा।

जैन मंदिरों के निर्माण में प्रमुख प्रतीक व उनका महत्त्व

क) तीर्थंकरों का अंकन

जैन धर्म में तीर्थंकर (अरिहंत, जिनेन्द्र) उन 24 व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो स्वयं तप के माध्यम से आत्मज्ञान (केवल ज्ञान) प्राप्त करते है। जो संसार सागर से पार लगाने वाले तीर्थ की रचना करते है, वह तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर वह व्यक्ति हैं जिन्होनें पूरी तरह से क्रोध, अभिमान, छल, इच्छा, आदि पर विजय प्राप्त की हो)। तीर्थंकर को इस नाम से

कहा जाता है क्योंकि वे ''तीर्थ'' (पायाब), एक जैन समुदाय के संस्थापक हैं, जो ''पायाब'' के रूप में ''मानव कष्ट की नदी'' को पार कराता है।

जैन धर्म में मंदिर निर्माण के समय अनेक तीर्थकरों का अंकन क्या जाता है। जिन प्रतिमा का अर्थ है जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा या मूर्ति जो कि उनके स्वरूप का आभास कराने के लिए स्फटिक, पाषाण, धातु, काष्ठ आदि द्रव्यों से निर्मित की जाती है। प्रतिमाएं कृत्रिम रूप से वीतराग प्रभु की स्तुति करने के लिए निमित्त कारण हैं।

मंदिरों के निर्माण उपरांत उसमें प्रतिमा की स्थापना की जाती है। प्रतिमा को पञ्चकल्याण प्रतिष्ठा विधान से प्रतिष्ठित किया जाता है । उसके उपरांत उत्साहपूर्वक शुभ मुहूर्त में मंत्रोच्चार पूर्वक प्रतिमा को पीठिका पर विराजमान किया जाता हैं।

जिन प्रतिमा लक्षणः-

जैन प्रतिमाएँ दो ही आसनों में निर्मित एवं प्रतिष्ठित करायी जाती हैं- पद्मासन एवं कायोत्सर्ग मुद्रा। इन्ही दो मुद्राओं में जैन संस्कृति में ध्यान किया जाता है उसी ध्यानावस्था में मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ, बाईसवें तीर्थंकर एवं महावीर को पद्मासन अवस्था एवं शेष इक्कीस तीर्थंकरों को कायोत्सर्ग अवस्था या मुद्रा में मोक्ष प्राप्त हुआ। अन्य असंख्यात जिन भी इन्ही दो अवस्थाओं में मोक्ष को प्राप्त हुए। इस कारण किसी भी तीर्थंकर या जिन की प्रतिमा उपरोक्त दोनों ही आसनों में निर्मित या प्रतिष्ठित की जाती है। जिन या तीर्थकरों की प्रतिमाएँ पूर्ण रूप से मानव स्वरूप में ही निर्मित की जाती हैं, उनके अनेक सिर, भुजाएँ, आँख या पैर नहीं होते हैं । सर्वप्रथम जैनेतर वराहमिहिरकृत बृहतसंहिता में जैन प्रतिमाओं की विशेषताओं का निरूपण किया गया है- अजालम्बबाहुः श्रीवत्सांक प्रशांतमूर्तिशच दिग्वासस्तरूणों रूपयांशच कार्योऽहंतां देवा द्य अर्थात अर्हतों को तरूण, रूपवान, प्रशांत, व्यक्तित्व से सम्पन्न दिखाना चाहिए। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स लॉछन हो। घुटनों तक लम्बे हाथों के साथ दिगम्बर अर्थात निर्वस्त्र रूप में दिखाया जाना चाहिए। छठी शती ईसवी के ग्रंथ मानसार के अनुसार प्रतिमा में दो हाथ और दो नेत्र हों, मुख पर श्मश्रु (दाडी व मुँछ) न हो, सिर के ऊपर जटाजूट दिखाया जाये साथ ही शरीर आर्कषक दिखाया जाना चाहिए, उनके शरीर पर किसी भी प्रकार के कोई आभूषण न हो न ही वस्त्र, प्रतिमा ध्यानावस्था में हो एवं वक्ष स्थल पर श्रीवत्स लॉछन अंकित हो। इस ग्रंथ के अनुसार जिन मूर्ति जिन प्रतिमा कायोत्सर्ग या पद्मासन मुद्रा दानों में समचतुरस्त हों, दोनों पैरों में समरूपता हो और दोनों हॉथ लम्बे हों व एक ही मुद्रा में हों। समूची प्रतिमा दृढता की मुद्रा में हो और परमात्म स्वरूप में तन्मयता की अभिव्यक्ति करती हो। दॉये और वॉयें हाथों के करतल ऊपर की ओर हों। प्रतिमा पद्मासन या कायोत्सर्ग दोनों ही मुद्राओं में आसन पर दिखाया जाना चाहिए।

गोम्मतेश्वर प्रतिमा भारतीय राज्य कर्नाटक के श्रवणबेलगोला शहर में विन्ध्यगिरी पहाड़ी पर 57 फुट (17 मीटर) ऊंची अखंड मूर्ति है। ग्रेनाइट के एक ही खंड से खुदी हुई, यह प्राचीन दुनिया की सबसे ऊंची अखंड मूर्तियों में से एक है।

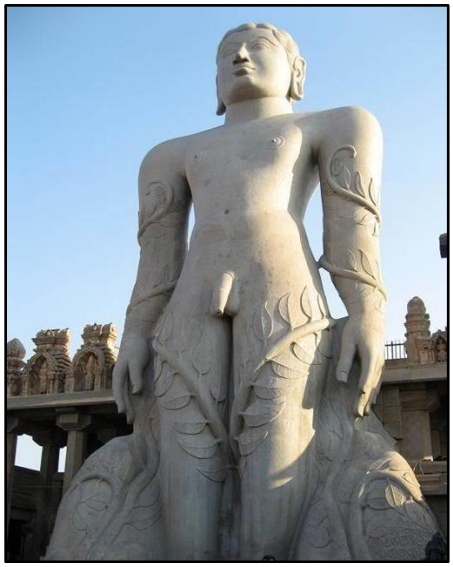

चित्र- गोम्मतेश्वर प्रतिमा की कायोत्सर्ग मुद्रा

प्रतिष्ठापाठ में उल्लिखित है कि जिन बिम्ब शांत, नास्त्रागदृष्टि, प्रशस्तमानोन्मानयुक्त, ध्यानारूढ़ एवं किंचित नम्रग्रीव बताया है। कायोत्सर्ग आसन में हाथ लम्बायमान रहते हैं एवं पद्मासन प्रतिमा में वामहस्त की हथेली दक्षिण हस्त की हथेली पर रखी हुई होती है।

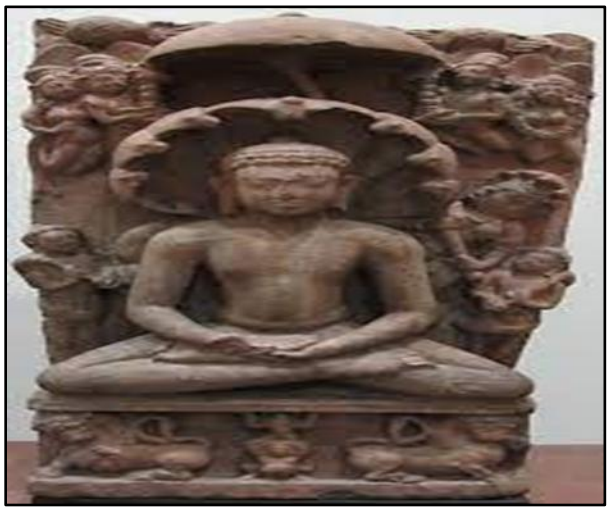

तीर्थकर प्रतिमा की पहचानः-

प्रत्येक तीर्थंकर प्रतिमा अपने लॉछन से पहचानी जाती है जो उनकी पादपीठ पर उत्कीर्ण किया जाता है। इन लॉछन या प्रतीक चिन्हों का विधान जैन धर्म के दोनों आम्नायों में हैं, किन्तु कुषाण काल तक तीर्थकर प्रतिमाओं के लॉछन अर्थात चिन्ह उत्कीर्ण नहीं किया जाते थे अतः उत्कीर्ण लेख ही पहचान के आधार थे। कतिपय तीर्थकरों की अपनी विशिष्ट लक्षण भी हैं जैसे प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ की प्रतिमा में उनके बाल कंधों तक होते है या प्रतिमा जटाशेखर युक्त होती है। सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ के सिर पर सर्प के पाँच फण होते हैं वहीं तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ के सिर पर सात, नौ, ग्यारह या हजार सर्पफण होते हैं।

चित्र- सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ के सिर पर सर्प के पाँच फण

ख) मानवाकृतियों का अंकन

जैन मंदिरों में तीर्थंकर की प्रतिमा के साथ दीवारों पर मानव की आकृतियों को भी विशेष स्थान दिया जाता है। जोधपुर संभाग के लगभग सभी मंदिरों में स्त्रियों और पुरुषों के चित्रों दीवारों पर मिल जाते है। जैसे रणकपुर का जैन मंदिर, दिलवाड़ा का जैन मंदिर, भैरू भाग का जैन मंदिर आदि।

जैन, तीर्थंकरों, की स्थापना की पूजा करते हैं, जो सर्वोच्च प्राणियों के रूप में पूजनीय हैं, लेकिन जैसे जैन अभिलेखों के अनुसार समय के साथ कई जैन मंदिरों में यक्ष- यक्षिणियों की

पूजा शुरू कर दी।

कुछ युगलवृत्तियों के अनुसार, जैनियों का मानना है कि इन यक्षों और यक्षियों को इंद्र ने तीर्थों की प्राप्ति के लिए नियुक्त किया था। इसलिए, वे हमेशा जिन के आसपास पाए जाते थे और यह जैन मंदिरों में और जिन के दस्तावेज के आसपास भी उनकी उपस्थिति होने का दावा करता है।वे नर (यक्ष) और मां (यक्षिणी) के जोड़ में पाए जाते हैं। यक्ष आमतौर पर जिन प्रतिमा के ठीक ओर पाई जाती हैं, जबकि यक्षिणी नीचे की ओर।

सभी यक्ष परोपकारी नहीं होते, क्योंकि कुछ पुरुषवादी भी हो सकते हैं। जिस तरह कुछ यक्षों ने भगवान महावीर की पूजा की और उन्हें कुछ कष्टों से बचा लिया, यक्ष सुलपानी ने अपने मध्य में भगवान महावीर को परेशान किया और बहुत दर्द दी और इसी तरह की कहानियाँ उपलब्ध हैं जहाँ यक्ष ने दूसरों को भी परेशान किया। यक्ष के आवासीय स्थान (भवन) को चैत्य या अयातन के रूप में भी जाना जाता है। यह कभी भी हो सकता है, शहर के बाहर, पहाड़ या पहाड़ पर, जलयात्रा के पास, शहर के द्वार पर, या शहर के भीतर या महल में। प्रसिद्ध यक्ष अंगुलिमाल जंगल में पेड़ रह रहा था और जब बेहतर के लिए सुधार किया गया, तो उसे शहर के द्वार पर जगह मिली।

चित्र- चक्रेश्वरी देवी

चित्र- अंबिका देवी

चित्र- नाकोड़ा भैरव

ग) धार्मिक चिन्हों का अंकन

किसी भी प्रकार के प्रतीक चिन्ह का उद्देश्य किसी वस्तु, स्थान या सत्व को एक विशेष पहचान या छवि प्रदान करना होता है। उदाहरण के लिए, ध्वज एक प्रतीक है जो विशिष्ट रूप से किसी देश की पहचान कराता है और उस देश से जुड़े कुछ विशेष आंतरिक मूल्य को दर्शाता है। कंपनियों (बवउचंदपमे) के संदर्भ में उसके लोगो (सवहव) को उसका प्रतीक माना जाता है। विश्व में अनेक धर्म मौजूद हैं किंतु किसी एक धर्म विशेष के लिए एक अद्वितीय सार्वभौमिक प्रतीक ढूंढना थोड़ा मुश्किल हो जाता है, क्योंकि इसमें बहुत सी अवधारणाएं और मूल्य शामिल हैं जो एक छवि में प्रस्तुत करना आसान कार्य नहीं है और इसलिए इसका एकल निकाय नहीं है, जिसका एक धर्म द्वारा अनुसरण किया जाता हो। वास्तव में, एक धर्म में कई प्रतीक होते हैं जो विभिन्न मूल्यों और अवधारणाओं को प्रतीकात्मक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। एक धार्मिक प्रतीक के कई अर्थ होना संभव है या यह कई धर्मों में समान होते हैं। इसी तरह जैन धर्म में कई प्रतीक हैं जो विभिन्न आंतरिक मूल्यों को दर्शाते हैं। कई प्रतीकों के होने के बावजूद, सभी जैन संप्रदायों ने महावीर जन्मकल्याण के 2500 वें वर्ष के समारोह के

अवसर पर एक ही सार्वभौमिक प्रतीक रखने का निर्णय लिया। कुछ महत्वपूर्ण जैन प्रतीक इस प्रकार हैं :

जैन ध्वज:-

जैन ध्वज का उपयोग विभिन्न समारोह और जैन मंदिरों के शिखर पर किया जाता है। पांच रंगों (लाल, पीला, सफेद, हरा, नीला) के इस ध्वज के मध्य में स्वास्तिक का चित्र बना होता है जिसके ऊपर तीन बिंदु और एक चंद्र बिंदु बना है। पांच रंग सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का प्रतीक हैं। स्वास्तिक चिन्ह देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, नर्क के जीव का प्रतिनिधित्व करता है। तीन बिंदु सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अष्टमंगल:-

अष्टमंगल के इन चिन्हों को अनादि काल से शुभ माना जा रहा है जिसका उल्लेख कल्पसूत्र में भी किया गया है। शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक जैन को तीर्थंकर से पहले साबुत चावलों से इन प्रतीक चिन्हों को बनाना चाहिए। जैन धर्म के आठ प्रतीकों के विषय में विभिन्न परंपराओं में कुछ भिन्नता है।

दिगंबर परंपरा के आठ प्रतीक हैं :

(1) परसोल (2) आईना

(3) ध्वज (4) आसन

(5) कलश (6) हाथ का पंखा

(7) चमार (8) पात्र

श्वेतांबर परंपरा के आठ प्रतीक हैं:

(1) स्वास्तिक (2) भद्रासन (आसन)

(3) श्रीवत्स (4) मत्स्य युग्म

(5) नंदावर्त (6) कलश

(7) वर्धमानक (भोजन पात्र) (8) दर्पण

ओउम:-

संस्कृत शब्द ओउम पांच स्वरों से मिलकर बना है जैन धर्म के इसका उपयोग श्रद्धेय व्यक्तियों को नमन करने के लिए किया जाता है।

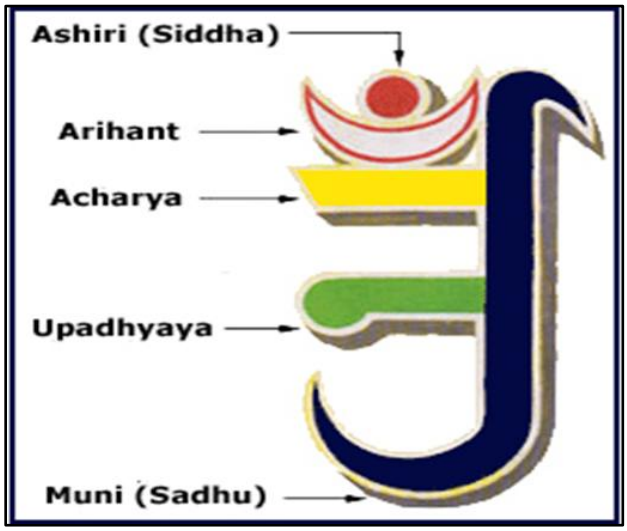

सार्वभौमिक जैन प्रतीक चिन्ह:-

इस प्रतीक चिह्न का रूप जैन शास्त्रों में वर्णित तीन लोक के आकार जैसा है। इसका निचला भाग अधोलोक, बीच का भाग- मध्य लोक एवं ऊपर का भाग- उर्ध्वलोक का प्रतीक है। इसके सबसे ऊपर भाग में चंद्राकार सिद्ध शिला है। अनन्तान्त सिद्ध परमेष्ठी भगवान इस सिद्ध शिला पर अनन्त काल से अनन्त काल तक के लिए विराजमान हैं।

जैन मूर्तिकला में अधिकांशतः निवस्त्र ध्यान मुद्रा में बैठे ऋषि होते हैं। जैन कला में लोकप्रिय विषयों और प्रतीकों में तीर्थंकर (जैन उद्धारक, या मानव जिन्होंने परम आध्यात्मिक उद्धार प्राप्त किया और समाज के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में कार्य किया), यक्ष और यक्षिणी (अलौकिक पुरुष और महिला अभिभावक), और पवित्र प्रतीक जैसे कमल और स्वस्तिक, जो शांति और कल्याण का प्रतीक थे, को शामिल किया गया था।

सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त विभिन्न मुहरों पर छपे आंकड़े जैन छवियों के समान हैंः नग्नावस्था एवं ध्यान मुद्रा। सबसे पुरानी ज्ञात जैन प्रतिमा पटना संग्रहालय में रखी गयी है, जो लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व की है। श्री दिगंबर जैन बड़ा मंदिर हस्तिनापुर का सबसे पुराना जैन मंदिर है। मुख्य मंदिर वर्ष 1801 में बनाया गया था। इसकी स्थापना के बाद से यह पूरे देश में जैनियों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थल रहा है। यह कई महत्वपूर्ण स्मारकों और मंदिरों से बना हुआ है जो जैन मूर्तिविज्ञान का समर्थन करते हैं।

अष्टमंगल और श्रीवत्स जैसे प्रतीक चिन्ह जैन धर्म में ही नहीं वरन् हिन्दू और बौद्ध धर्म में भी विशेष स्थान रखते हैं। अष्टमांगलिक चिह्नों के समूह को अष्टमंगल कहा गया है। आठ प्रकार के मंगल द्रव्य और शुभकारक वस्तुओं को अष्टमंगल के रूप में जाना जाता है। अष्टमंगल हिंदू, जैन, और बौद्ध धर्म जैसे कई धर्मों के लिए आठ शुभ संकेत का एक पवित्र समूह है। यह ''प्रतीकात्मक गुण'' (चक्रसेन) यिदम (वज्रयान बौद्ध सम्प्रदाय के देवता) और शिक्षण उपकरण हैं। यह प्रतीक न केवल प्रबुद्ध बौद्धकि गुणों को इंगित करते हैं वरन् यह वे कारक हैं जो इन प्रबुद्ध ''गुणों'' को अलंकृत करते हैं। अष्टमंगल के कई सांस्कृतिक संस्मरण और रूपांतर हैं।

हिंदू परंपरा इन्हें इस प्रकार सूचीबद्ध किया गया है:

(1) सिंह (राजा) (2) वैजयंती माला

(3) वृषभ (बैल) (4) भेर (केतली)

(5) नाग (6) व्यजन (पंखा)

(7) कलश (8) दीपक

प्राचीन भारत में आठ शुभ प्रतीकों का उपयोग राजाओं के राज्याभिषेक जैसे समारोहों में किया जाता था। प्रारंभ में इन प्रतीकों में: सिंहासन, स्वास्तिक, हाथ की छाप, सिरा मुक्त बंधन, गहनों का फूलदान, जल-मदीरा की सुरही, मछलियों का जोड़ा, कलश शामिल थे। बौद्ध धर्म में, ईश्वर द्वारा सौभाग्य के ये आठ प्रतीक बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद प्रसाद स्वरूप दिए गए थे। हिंदू परंपरा में, अष्टमंगल का उपयोग कुछ विशेष अवसरों पूजा, विवाह (हिंदुओं का) आदि के दौरान भी किया जाता है। श्रीवत्स एक प्राचीन प्रतीक है जिसे भारतीय धार्मिक परंपराओं में शुभ माना जाता है। श्रीवत्स का अर्थ ''श्री की प्रिया'' अर्थात देवी लक्ष्मी है। यह विष्णु की छाती पर एक निशान है जहां उनकी पत्नी लक्ष्मी निवास करती हैं ऐसा कहा जाता है कि विष्णु के दसवें अवतार, कल्कि में उनके सीने पर श्रीवत्स का निशान होगा। यह विष्णु सहस्रनाम में विष्णु के नामों में से एक है। श्रीवत्स आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु और कर्नाटक में एक लोकप्रिय नाम है।

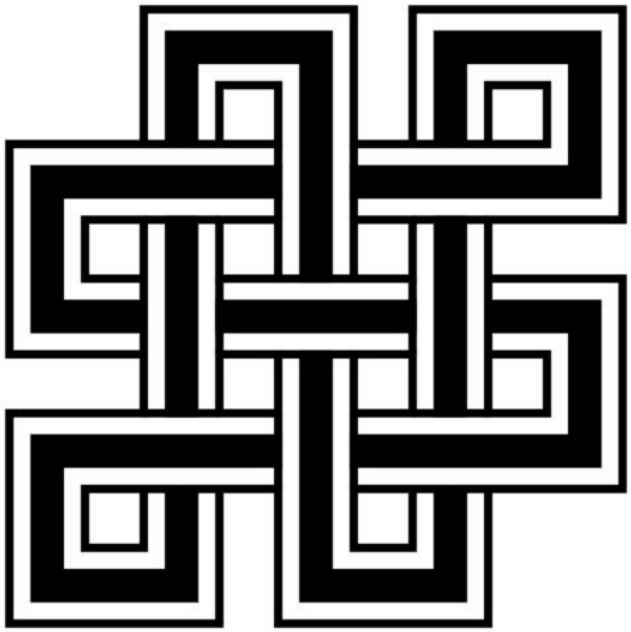

बौद्ध धर्म में, श्रीवत्स को अधिदेवता (यिदम) की विशेषता बताया गया है। तिब्बती बौद्ध धर्म में, श्रीवत्स को एक त्रिकोणीय भंवर या एक सिरा मुक्त बंधन के रूप में दर्शाया गया है। चीनी परंपरा में, बौद्ध प्रार्थना की माला के मोती अक्सर इस बंधन में बंधे होते हैं। 80 माध्यमिक विशेषताओं की कुछ सूचियों में, यह कहा जाता है कि बुद्ध का हृदय श्रीवत्स से सुशोभित है।

जैन हाथ -

भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण वर्ष (१९७४-१९७५ ई०) में जैनधर्म के सभी आम्नायों को मानने वालों के द्वारा एक मत से एक प्रतीकात्मक चिह्न को मान्यता दी गई, यों तो अहिंसा और परोपकार की भावना से जैन कहीं भी अपनी पहचान बना लेते हैंय क्योंकि उनका जीवनोद्देश्य ही है: परस्परोपग्रहो जीवानाम्, यह चिह्न जैनों को एक अलग पहचान देता है।

- जैन प्रतीक चिह्न का स्वरूप जैन शास्त्रों में वर्णित तीन लोक के आकार जैसा है।
- इसका निचला भाग अधोलोक, बीच का भाग मध्यलोक एवं ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक का प्रतीक है।
- चन्द्राकार सिद्धशिला का सूचक है। अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी भगवान् इस सिद्धशिला पर अनादिकाल से अनन्तकाल तक के लिये विराजमान हैं।
- सिद्धशिला के ऊपर एक बिन्दु सिद्धजीव का प्रतीक है।
- इसके ऊपरी भाग में प्रदर्शित स्वस्तिक की चार भुजायें गतियों-नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देवगति का प्रतीक है।
- स्वस्तिक के ऊपर प्रदर्शित तीन बिन्दु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को दर्शाते हैं और संदेश देते हैं कि सम्यक् रत्नत्रय के बिना प्राणी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है।
- चिह्न के निचले भाग में प्रदर्शित हाथ अभय की सूचना देता है और लोक के सभी जीवों के प्रति अहिंसा का भाव रखने का परस्परोपग्रहो जीवानाम् प्रतीक है।
- हाथ के बीच में २४ आरों वाला चक्र २४ तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत जिनधर्म को दर्शाता है एवं बीच में प्रदर्शित अहिंसा जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है।
- परस्परोपग्रहो जीवानाम् का अर्थ है-जीव एक-दूसरे का उपकार करते हैं। यह जैन प्रतीक चिह्न संसारी प्राणी की वर्तमान दशा एवं इससे मुक्त होकर सिद्धशिला तक पहुँचने का मार्ग दर्शाता है।
- आजकल लगभग सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं, वैवाहिक कार्ड, क्षमावाणी कार्ड, भगवान् महावीर निर्वाण दिवस, दीपावली एवं जैन समाज से जुड़े किसी भी कार्यक्रम की पत्रिकाओं में इस प्रतीक चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

घ) पशु- पक्षियों का अंकन

जैनधर्म का तो प्रधान लक्ष्य ही जीव उद्धार है। बल्कि यदि कहा जाये कि जीव उद्धार के लिए

किये जाने वाले सत्प्रयत्नों का नाम ही जैनधर्म है तो अनुचित न होगा। इसी से आज कला की परिभाषा जो 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की जाती है अर्थात् जो सत्य है, कल्याणकर है और सुन्दर है वही कला है, वह जैन कला में सुघटित है, क्योंकि जैनधर्म से सम्बद्ध चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला सुन्दर होने के साथ ही साथ कल्याणकर भी है और सत्य का दर्शन कराती है।जैनधर्म का तो प्रधान लक्ष्य ही जीव उद्धार है। बल्कि यदि कहा जाये कि जीव उद्धार के लिए किये जाने वाले सत्प्रयत्नों का नाम ही जैनधर्म है तो अनुचित न होगा। इसी से आज कला की परिभाषा जो 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की जाती है अर्थात् जो सत्य है, कल्याणकर है और सुन्दर है वही कला है, वह जैन कला में सुघटित है, क्योंकि जैनधर्म से सम्बद्ध चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला सुन्दर होने के साथ ही साथ कल्याणकर भी है और सत्य का दर्शन कराती है।

ङ) प्राकृतिक अंकन व ज्यातिमीयक अंकन

जैन मंदिरों में अनेक प्राकृतिक ज्यामितीयक आकृतियों का अकंन किया जाता हैंद्य मंदिरों स्तंभों को कीर्तिमुखों से सुसज्जित किया गया है। अष्टभुजा युक्त जैन देवी गरुड़ पर सवार अनेक अस्त्र- शस्त्र लिए द्वार शाखा पर उपस्थित हैं। मंदिर का मंडप गूढ़ मंडप प्रकृति का है, जिसपर वितान, सादा बना हुआ है। छत के बीम कलात्मक सज्जायुक्त हैं। इन धरणों पर घंटियों की मालाएँ बनाई गई हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ शार्दूल और कीर्तिमुख भी रेखांकित हैं।

महामंडप, अर्धमंडप के आगे है। वर्तमान समय में इसमें दीवारें अनुपस्थित हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के विपरीत, इसमें सामने की ओर एक आड़ी पंक्ति में तीन चतुष्कियाँ हैं। इन चतुष्कियों का वितान सादा है। महामंडप के द्वारपार्श्वों की भित्तियों की आधार वेदियों पर आमने सामने मुख किए दो सशस्त्र द्वारपाल अंकित किए गए हैं। वे करंड मुकुट धारण किए हुए हैं तथा गदाधारी हैं। इसकी उपपीठ धार- शिला से बनी हैं। महामंडप के द्वार की सात शाखाएँ हैं -- शाखाएँ पुष्प, चक्र, व्याल, गण, मिथुन, कर्णिक, पद्य इत्यादि से सजाई गई है। इनमें प्रस्तर बेलबूटों को भी सजाया गया है। तृतीय तथा पंचम द्वार शाखा पर मिथुन हैं। पहली शाखा का अलंकरण फुल्लिकाओं से तथा दूसरी शाखा एवं छठी शाखा का व्यालों से किया गया है। चैथी शाखा में कर्णिका और कमल इसी स्तंभशाखा पर एक सरदल हैं, जिसके मध्य में गरुड़ासीन अष्टभुजी चक्रेश्वरी अंकित की गई है। उनके हाथों में फल, बाण, चार चक्र, धनुष और शंख हैं। सरदल के दोनों किनारों पर तीर्थंकर प्रतिमाएँ और नवग्रहों की प्रतिमाओं अंकित की गई है तथा द्वार मार्ग को आवृत करने वाली सातवीं शाखा में सर्पिल बेलबूटों तथा उसके पार्श्व में एक खड़ी चित्रवल्लरी का अंकन किया गया है।

REFERENCES

1. देवनन्दि जी महाराज, देव शिल्प मंदिर वास्तु एवं स्थापत्य,पेज न. 63

2. देवस्थान विभाग, राजस्थान,मंदिरों का इतिहास, पेज न. 3

3. https://prarang.in/meerut/posts/6153/16th-Jain-Tirthankar-Shantinath- and-his-

4. Samadhi-Swaroop-Kayotsarga-Mudra-in-Hastinapur

5. https://encyclopediaofjainism.com/जैन-प्रतिक-चिह्न

6. http://www.namokartirth.com/jain_symbols_h.php

7. https://hi.wikipedia.org/घंटाई मन्दिर